अनुक्रम

1. पर्यावरण पत्रकारिता — 9
   प्रो. सुरेश चंद्र
2. यथार्थ के प्रति प्रतिबद्ध प्रथम उपन्यासकार : भुवनेश्वर मिश्र — 18
   डॉ. भरत सिंह
3. शब्द की अर्थवत्ता और सार्थकता के कवि : केदारनाथ सिंह — 24
   डॉ. अशोक कुमार चारण
4. अज्ञेय के उपन्यासों के पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण — 37
   डॉ. दिग्विजय कुमार शर्मा
5. सामाजिक अस्वीकार्यता का दंश झेलता किन्नर समुदाय — 44
   भावना चोटिया
6. हरे, लाल और काले रंग का कोलाज : इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता — 53
   डॉ. इंदु के.वी.
7. लोक संस्कृति के संवाहक राजस्थानी लोकगीत — 59
   जगदीश चन्द्र गुर्जर
8. वैश्वीकरण के संदर्भ में 'जाल से जाल तक' — 67
   नीतू पी.जे.
9. स्वयं प्रकाश की कहानियों में मूल्य संक्रमण — 73
   (संदर्भ : 'जंगल का दाह' एवं 'गौरी का गुस्सा' कहानियाँ)
   डॉ. प्रिया ए.
10. ग्रियर्सन का हिंदी को अवदान — 78
    डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी
11. राजस्थान की समग्र विरासत के चितेरे यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' — 86
    डॉ. रक्षा गोदावत
12. 'रंगभूमि' का खिलाड़ी-सूरदास — 92
    डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

210

13. संत जांभोजी के काव्य में नारी दृष्टि 103
जगदीश

14. सनातन जीवन शैली ही पर्यावरण संरक्षण का एकमेव मार्ग 105
मुकेश जैन

15. जीवन के कटु यथार्थ से रू-ब-रू कराती कहानियाँ 113
(विशेष संदर्भ : मनीषा कुलश्रेष्ठ का कहानो संग्रह 'कुछ भी तो रूमानी नहीं')
डॉ. नवीन नंदवाना

16. समकालीन कहानियों में लुप्त होता गाँव 123
('बाजार में रामधन' कहानी-संग्रह के विशेष संदर्भ में)
डॉ. सजना बीगम

17. आत्मकथात्मक काव्य तथा काव्यात्मक आत्मकथा 128
डॉ. संदेशा भावसार

18. आदिवासी संस्कृति और ध्रुव भट्ट का उपन्यास 'तत्त्वमसि' 138
डॉ. शशि पंजाबी

19. आदिवासी समाज पर आर्थिक विकास का प्रभाव और हिंदी उपन्यास 146
डॉ. उमेश कुमार पांडेय

20. साकेत में राष्ट्रीयता : एक विमर्श 153
डॉ. बसुंधरा उपाध्याय

21. दादू पंथ के विरही गृहस्थ संत कवि बषना 162
वीरमाराम पटेल

22. गोरखनाथ व कबीर के काव्य में योग साधना का माहात्म्य 174
डॉ. निर्मल चक्रधर

23. समय और समाज की नब्ज़ को पकड़ने की कोशिश : 181
डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी की कहानियाँ
डॉ. चंद्रकांता बंसल

पर्यावरण पत्रकारिता

प्रो. सुरेश चंद्र*

जीवन पर्यावरण पर निर्भर करता है। जिन्हें जीवन से प्यार है, वे पर्यावरण की शुद्धता के विषय में चिंतन-मनन करते हैं। जब पर्यावरण प्रदूषण जीवन के लिए बड़ी चुनौती बन गया तब अनेक पर्यावरणविद् आगे आए और उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की समस्या पर विचार कर पर्यावरण संरक्षण हेतु पर्यावरण-विमर्श आरंभ किया और अनेक आंदोलन किए। पर्यावरण संरक्षण हेतु हुए आंदोलनों में से प्रमुख आंदोलन इस प्रकार हैं- विश्नोई आंदोलन (खेजड़ली गाँव, राजस्थान, सन् 1730), चिपको आंदोलन (रेनीगाँव, उत्तराखण्ड, सन् 1974 ई.), साइलेंट घाटी आंदोलन (केरल, सन् 1980 ई.), अप्पिको आंदोलन (सलकानी गाँव, कर्नाटक, सन् 1983 ई.), नर्मदा बचाओ आंदोलन (मध्य प्रदेश, सन 1989), बीज बचाओ आंदोलन (हेवलघाटी क्षेत्र, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, सन् 1990), चिल्का बचाओ आंदोलन (उड़ीसा, सन् 1992) आदि। भारतीय संदर्भ में पर्यावरणविद् श्री सुंदर लाल बहुगुणा, श्री अनुपम मिश्र और श्री राजेंद्र सिंह के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक पर्यावरण विमर्श के आलोक में पर्यावरण पत्रकारिता का प्रारंभ हुआ। पर्यावरण-विमर्श के तहत उत्पन्न और विकसित पर्यावरण पत्रकारिता का उद्देश्य लोगों को पर्यावरण की शुद्धता के प्रति जागरूक बनाकर पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा देना है।

* अध्यक्ष, हिंदी विभाग एवं अधिष्ठाता, भाषा एवं साहित्य पीठ, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, पंचानपुर रोड, गया (बिहार) 824326

जीवन के कटु यथार्थ से रू-ब-रू कराती कहानियाँ

(विशेष संदर्भ : मनीषा कुलश्रेष्ठ का कहानी संग्रह 'कुछ भी तो रूमानी नहीं')

डॉ. नवीन नंदवाना*

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कहानी संग्रह 'कुछ भी तो रूमानी नहीं' में कुल 9 कहानियाँ संगृहीत हैं। संग्रह की प्रथम कहानी को ही लेखिका ने संग्रह का शीर्षक दिया है। यह कहानी मानव के प्रेम संबंधों व जीवन दर्शन को व्याख्यायित करती है। यह कहानी वनजा और मलय की कथा के सहारे प्रेम एवं देह से जुड़े कई सवाल खड़े करती है। मलय द्वारा लिखी गई कहानी में वनजा अपने को खोजने का प्रयास करती है। उसे लगता है कि मलय की कहानी में वह जरूर होगी किंतु मलय साफ कह देता है कि इसमें तुम कहीं नहीं हो और न ही इसमें कुछ रूमानीपन है। कहानी लिखे कागज के कटे-फटे टुकड़ों को मलय के जाने के बाद वनजा उसे जोड़कर पूरी कहानी पढ़ना चाहती है किंतु वह इस कदर फाड़ी गई है कि उसके लिए उसे जोड़ना एक पहेली बन जाता है। वह कहानी एवं अपने जीवन के विषय में साफ कहती है कि- ''अपने आप को ढूँढ रही हूँ मैं। तुमने ठीक ही कहा था, इस कहानी में सच ही कुछ भी.... कहीं भी.... मैं तो सच ही में कहीं नहीं हूँ। एक बूढ़ा ज्योतिष है और उसका भविष्य की पर्चियों को चौंच से निकालने वाला, पलतू तोता है... उस बूढ़े की याद में एक खानाबदोश मादक.... झरने जैसी औरत है। मैं कहाँ हूँ.....। इसमें कुछ भी तो रूमानी नहीं है।''[1]

* सह आचार्य, हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) 313001

समवेत [ISSN : 2321-6131]

कहानी केवल प्रेम व रूमानी बातों तक ही नहीं रुक जाती बल्कि धर्म व शुद्धतावाद के मुद्दे भी उठाती है। वनजा की माँ रसोई का पूरा ध्यान रखती है। जब मलय किन्ना को आलू का पराठा बनाना सिखा रहे थे तब का वार्तालाप हिंदू-मुस्लिम वाली मानसिकता व शुद्धतावादी आचरण को दर्शाता है। वनजा पूछती है- ''मैंने हड़बड़ा कर पूछा था। मलय जी, आपकी जाति क्या है ? मैं कहूँ मुसलमान तो ? अईयय्यो ! कन्ना डर गई थी। हट्। नाम तो हिंदू है। पर क्यों ? अम्मा की रसोई में बस सवर्ण घुस सकते हैं। शुद्ध शाकाहारी और वह भी स्नान-ध्यान के बाद।''[2] विवाह विषयक अवधारणा को अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति देती हुई कहानीकार लिखती है कि- ''शादी क्यों नहीं की ? उससे क्या फर्क पड़ता है ? बंधे रहते। खुश रहते। बंधकर कौन खुश हुआ है ?''[3]

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'कालिंदी' नारी जीवन की कटु यथार्थ का कच्चा चिट्ठा पेश करती है। जीवन चलाने की मजबूरी के खातिर देह व्यापार में लगी औरतों के जीवन के मार्मिक प्रसंगों को कहानी बेहतरीन तरीके से बयाँ करती है। जमुना सलुंके उस समस्त नारी जाति की कड़वी दास्तान कहती है, जो देह व्यापार में लिप्त होकर जीवन के जरूरी कामों के लिए दो-दो पैसे जोड़ती हैं। पीली इमारतों की एक शृंखला, दलाली करते प्रेमी या पति, सीलन व बदबूदार गलियाँ और औरतों के जिस्म उनकी बदहाली की कहानी कहने के साथ-साथ बचपन में जीती पीढ़ी के सुख सपने संजोने के खातिर किस प्रकार औरतें मजबूरी में देह व्यापार में संलग्न हो जाती हैं, उसकी कड़वी दास्तान है। यह एक ऐसी औरत की कड़वी कथा है, जहाँ कस्टमर का आना भी डरावना है और न आना भी। लेखिका लिखती है कि- ''कस्टमर शब्द उस गली के हम उम्र बच्चों के बीच एक डरावना शब्द था। एक पिशाच जो औरतों का गला दबाया करता था। औरतें उसकी गिरफ्त में कराहतीं..... थीं। एक पिशाच जिसके आने से.... कभी कटोरदान में रोटी कम पड़ जाती थीं या फिर.... बचती तो सब्जी या शोरबे के बिना ही खानी होती थीं।''[4] यहाँ हम उस मजबूरी को स्पष्टत: समझ सकते हैं कि पेट की आग के आगे मनुष्य को और यहाँ खासतौर पर स्त्री को कितने कड़वे घूँट पीने पड़ रहे हैं।

यहाँ का सच जानने पर बच्चा साफ तौर पर जमुना से कहता है कि हम यह इलाका छोड़कर कहीं और स्थान पर जाकर रहेंगे। अब सच्चाई जानने पर उसका जी घुटने लगा है किंतु न चाहते हुए भी उन्हें वही गुजर-बसर करना पड़ता है। कारण कि किसी दूसरे इलाके में रहने के लिए वे मकान किराया चुकाने की स्थिति में नहीं हैं। वेश्या जीवन जी रही जमुना की माँ की हालत देख जमुना को पीड़ा होती है। वह

212

कहती है कि- ''मैं देखती माँ के बदन पर तरह-तरह के निशान, सिगरेट के जले सलेटी निशान, नीले-जामुनी निशान और बुरी तरह से डर जाती। मुझे माँ पर गुस्सा आता। यह बर्तन-झाड़ू क्यों नहीं कर लेती। दस-दस रुपये के लिए मर्दों से खुद को कुचलवाती क्यों है। मगर वह तो मुझसे भी यही उम्मीद लगाने लगी थी।''[5]

जमुना उस दलदल से तो पूरी तरह नहीं निकल पाती किंतु वह उससे मिलता-जुलता ही कुछ दूसरा मार्ग अपनाकर अपना गुजर-बसर करती है। आर्ट कॉलेज के कलाकारों के सामने अपनी न्यूड तस्वीरें बनवाती और उससे होने वाली आय से गुजारा चलाती। किंतु उस आर्टिस्ट को उस चित्र से जितना यश व धन मिलता उसका कुछ अंश भी अपना सर्वस्व समर्पण करने वाली मॉडल को नहीं मिलता। ''जीवित मॉडल ही कलाकार के मास्टर पीस बनाने के लिए बड़ा माध्यम होती हैं लेकिन उन्हें वह सम्मान नहीं मिलता जो उन्हें मिलना चाहिए।''[6] इस प्रकार 'कालिंदी' कहानी जमुना की व्यथा-कथा के माध्यम से स्त्री जाति के एक विशेष वर्ग की पड़ताल कथा है।

'फाँस' कहानी हाथ में फँसी लकड़ी की फाँस के साथ-साथ मन की फाँस का भी वर्णन करती है। कहानी अपने विकास तक जाते-जाते पिता-पुत्री के पवित्र रिश्ते को तार-तार करने वाले पिता के कारनामों का कच्चा चिट्ठा उजागर करती है। पिता का अपनी बेटी के प्रति असीम वात्सल्य होता है किंतु आज के दौर में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इस पावन रिश्ते पर कालिख पोत देते हैं। कहानीकार ने ऐसे ही क्रूर पिता के यथार्थ को उद्घाटित किया है। माँ के जीवन काल में अंतिमा के पिता किसी अन्य स्त्री, जो एक नर्स है, के साथ संबंधों में उलझे रहते हैं। माँ की मृत्यु के बाद सब परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। नर्स भी उनका साथ झड़क देती है। पिता शराबी हो जाता है। घर के एकाकीपन में पिता के हृदय का दानव पुत्री से दुर्व्यवहार करने लगता है। अंतिमा के कथन से हम इस यथार्थ को समझ सकते हैं- ''बाऊजी की उसके प्रति वितृष्णा जीवन भर रही... बचपन में मनहूस कहीं की... या छोरी... के अलावा कब उसे प्यार से अंतिमा कहकर बुलाया ? हाँ बुलाया था एक बार... नशे की हालत में अपनी असीमित, अनैतिक और किसी मनोरोग की हद तक जा पहुँची कामना के ज्वार में... अंतिमा ऽऽ और फिर वितृष्णा का बचा खुचा हिस्सा, उसके पाले में आ गिरा था। अब उसे करनी थी वितृष्णा अपने जनक से जीवन भर।''[7]

पिता द्वारा किए जा रहे दैहिक शोषण से अंतिमा पूरी तरह टूट जाती है। एक बार वह अपने पिता के सीने पर कोहनी से इतना तेज प्रहार करती है कि उन्हें बिस्तर पकड़ना पड़ता है। पिता की मृत्यु पर अंतिमा उनका क्रियाकर्म करती है। ऐसा करते

हुए वह ग्रामीणों के द्वारा किए जा रहे प्रतिवाद की परवाह नहीं करती। वह कपाल-क्रिया करते समय सोचती है कि- ''इस संस्कार का क्या महत्त्व होता होगा ? क्या इससे मनुष्य के दिमाग में रहता काम, क्रोध, मोह का प्रेत मुक्त हो जाता होगा ? विचारों के घनीभूत बवंडर की संभावना से घबराकर उसने कपाल पर एक भरपूर प्रहार किया। कपाल-अस्थियों के टुकड़े-टुकड़े बिखर गए थे।''[8]

कहानी अन्य समानांतर कई विषयों को भी उठाती है। समाज पुत्री जन्म को किस प्रकार पीड़ाकारी समझता है। उसे पुत्री का जन्म कितना दर्द देता है। इस बात को भी कहानी के माध्यम से वाणी प्रदान की गई है। ''पता है अंतू जब हुई तो भाई साहब तमतमा कर घर से बाहर चले गए थे... और हमारी माँ यानी तेरी दादी खूब पछाड़े मार कर रोई थी। चौथी बार भी लड़की... दाई को तो धकिया ही दिया था बिना कुछ दिए-लिए।''[9] बेटी जन्म के कारण पिता बेटी की माँ और उस नवजात बेटी के प्रति भाव कटु रखने लगे थे। ''उत्तर में वही दहाड़, कल मरती हो तो आज मर ले। तूने दिया ही क्या हमें ? चार-चार छोरियों के सिवा। तीन तो जस-तस ब्याह दीं। वे दाँत किटकिटाते अब यह चौथी, इसे तो मैं कुएँ में ही फेंक आऊँगा।''[10] इस प्रकार कहानी कई प्रश्नों को बड़ी सच्चाई के साथ उठाती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'पॉजिटिव' एड्स का दंश झेल रही पीढ़ी की करुण गाथा है। यह एक युवती की कहानी है जो कि यौवन के द्वार पर आ चुकी है या यूँ कहें कि उससे भी कुछ आगे बढ़ चुकी है किंतु उसके जीवन में अभी प्रेम और देह जैसा कुछ भी नहीं आया। आज भी वह अपनी माँ के बताए जीवन क्रम में अपना जीवन जिए जा रही है। अनायास जब उसका मिलना एक फोटोग्राफर से होता है तो उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती है। वह अपने भीतर एक हलचल महसूस करती है। साथ ही उसके हारमोंस की उपस्थिति भी अब उसे महसूस होने लगती है।

वह उस पुरुष को अपना सब कुछ समर्पित कर देती है। वह उसके बच्चे की माँ बनने वाली होती है। उसी समय जीवन में एक नया मोड़ आ जाता है। वह युवक जिसके साथ उसने जीने-मरने की कसमें खाई, सुखद भविष्य की सपने देखे, उसे छोड़कर जाना चाहता है। जब वह उसे यह बताता है कि- ''माफ कर देना। मैं अपने अतीत का बेड़ा साथ लाया था, उसमें न जाने कब यह रोग बंधा चला आया। बेड़ा फैंक दिया मगर यह फैल गया हमारे बीच। मैं समय रहते बताता, अगर मैं खुद जानता। सब कुछ तो नॉर्मल था। मुझे तो तब पता चला जब सड़क पर पड़े एक घायल ट्रक ड्राइवर को मैं खून देने लगा। खून की जाँच हुई तो पता चला मैं

पॉजिटिव हूँ। यह जिप्सी होने की कीमत है।''[11] वह स्टेला को छोड़कर जाना चाहता है। वह चाहता है कि उसने उसके साथ शराब की घूँट बाँटे, सिगरेट भी, झूठे-सच्चे स्वर्ग भी, लेकिन वह अपने नर्क खुद भोगना चाहता है। स्टेला की जिंदगी को नर्क नहीं बनाना चाहता है। वह इस वादे के साथ अलविदा होता है कि वह अपने देश जाकर उसे कुछ पैसे भेजेगा और एक बड़ी राशि का चेक भेजता भी है।

गोआ की रिहैबिलिटेशन यूनिट उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को एड्स से बचा लेती है। कहानीकार ऐसी घातक बीमारी जेल रही महिलाओं में जीवन के प्रति उत्साह और जिजीविषा को जगाने का प्रयास करती हैं। शबाना के माध्यम से रचनाकार बताती हैं कि जिस शबाना की रिपोर्ट के आधार पर डॉक्टर कह देती है कि उसके जीवन में मात्र पाँच महीने बचे हैं। वह आज पाँच साल से जी रही है और चेतना जागृति का कार्य कर रही है। शबाना से स्टेला अपना दुख भूलती हैं एवं बॉब द्वारा भेजे हुए दस हजार डॉलर के चेक को अस्पताल के डोनेशन बॉक्स में डाल देती है। कहानी नि:संदेह एक प्रेमगाथा के रूप में आरंभ होती है किंतु आगे बढ़ते-बढ़ते आज की जीवन की घातक समस्या को रखते हुए बदलाव, परिवर्तन, आशावाद और जिजीविषा की ओर संकेत करती है।

संग्रह की कहानी 'मास्टरनी' एक साथ जीवन और जगत् के कई प्रश्न खड़े करती हैं। शिक्षिका की नौकरी कर रही सुषमा के माध्यम से मनीषा ने मध्यमवर्गीय जीवन के यथार्थ को उद्घाटित किया है। जहाँ एक ओर पैसों के खातिर नौकरी करना जरूरी है वहीं दूसरी ओर घर-परिवार की समस्याओं के बीच स्त्री का पिसना भी अवश्यंभावी है।

एक बेटी को अपने साथ रखकर सुषमा गाँव के स्कूल में अध्यापिका के पद पर कार्यरत है। वहीं बेटा पति के साथ रहकर शहर में पढ़ता है। सभी का ठीक से मिलना छुट्टियों में ही हो पाता है। परिवार से दूरी एवं अन्य जीवन की समस्याएँ सुषमा को भी भीतर से तोड़ रही होती हैं। वह अपने ट्रांसफर के कार्य के लिए पति का सहयोग चाहती है किंतु पति का सहयोग उसे इस काम में नहीं मिल पाता है। घबराकर मंत्री, डायरेक्टर, एमएलए के वहाँ तक पहुँचती है।

कहानी ट्रांसफर के नाम पर चल रहे व्यापार को भी उद्घाटित करती है। जब सुषमा दवी, सहमी एमएलए के घर जाती हैं, तब एमएलए उसे देखकर जान जाता है कि यह औरत उसकी क्लासमेट है किंतु सुषमा उसे नहीं जान पाती। जब वह आत्मीयता से उससे मिलता है तो उसके हृदय का ज्वार फूट पड़ता है और वह रो

पड़ती है। ट्रांसफर के नाम पर चल रहे व्यापार को मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपनी कहानी में कुछ इस प्रकार बताया है- ''ठीक है... जब पैसे ले आएँ तो मेरे इस मोबाइल नंबर पर संपर्क करें। उससे पहले व्यर्थ है मंत्री जी से बात करना। वे भड़क जाते हैं, ट्रांसफर की बात पर। आप पैसों का इंतजाम जल्दी ही करें। अब ट्रांसफर पर बैन भी लगने वाला है।''[12] पैसों के बल पर ट्रांसफर का भी अजीब खेल। आज एक ने पैसे दिए, कल किसी दूसरे ने, और यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। ''इस शिक्षा विभाग में भी ट्रांसफरों की भली चलाई, आज तुम करवा लोगी रिश्वत से तो दूसरी जाकर स्टे ले आएगी। फिर वह जुट जाएगी, तुम्हें उखाड़ने में। बेकार की एनर्जी, पैसा और वक्त वेस्ट करते रहो, हर साल छुट्टियों में।''[13]

इसी के साथ-साथ कहानी औरतों के साथ कार्य-स्थल पर हो रहे दुर्व्यवहार की ओर भी संकेत करती है। वहीं घर-परिवार में पति के आगे स्त्री की लाचारी को भी कहानी उद्घाटित करती है। कैसे उसे अपने जीवन में सारे थोपे हुए निर्णय स्वीकारने होते हैं। इस बात को भी यह कहानी बखूबी दर्शाती है। जीवन की आपाधापी में रिश्तों में आ रही शुष्कता, प्रेम के सोते का सूखना, रोमांस का कम होना, यंत्र जीवन जीने को मजबूर होना आदि कई विषयों को कहानी बखूबी अभिव्यक्ति देती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'क्या यही है वैराग्य' डॉक्टर पुखराज, डॉक्टर सुमेधा और मुनि सागर चंद के माध्यम से भारतीय सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं की पड़ताल करती है। कहानी जैन मुनि सागर चंद के बहाने कम उम्र में वैराग्य धारण कर मुनि बनने वाले मनुष्य के हृदयस्थ भावों का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करती है। मानव मन की विविध भावनाएँ समय-समय पर तरंगित होती ही रहती हैं। चाहे वह गृहस्थ हो या चाहे संन्यासी। जब ऐसी ही उत्ताल तरंगों की हलचल को जब डॉक्टर सुमेधा एक जैन मुनि के हृदय में महसूस करती हैं तो वह उनसे बोल उठती है कि- ''किसी ने भी दबाव नहीं दिया था इस उम्र में दीक्षा लेने को। एंड इट्स नेवर टू लेट। एक पलायन और... बस बन जाइए गृहस्थ। क्या आपके धर्म में लौट आने का मार्ग नहीं है ?''[14] सुमेधा का यह कथन मुनि को अंदर तक हिला देता है और वह उसे स्पष्ट कह देते हैं कि- ''सुमेधा जी मैं अपनी कमजोरी का प्रायश्चित्त करके आपसे मार्ग पूछने नहीं आया था। मैं स्वयं अनजान था इन अनजानी कामनाओं से।... आपको देखा तो कुछ विचलन हुआ। आज अवसर मिला तो मुझे लगा कि आपको बता दूँ... स्वीकार करूँ और क्षमा माँग लूँ तो उबर जाऊँगा इन विचलनों से। मगर आप.... हारा मैं अभी नहीं हूँ। मैं उबर जाऊँगा इन कामनाओं से एक दिन।''[15] और मुनि चातुर्मास के प्रारंभ से ही निराहार का व्रत कर अपने संकल्प की शक्ति को दर्शा देते हैं।

कहानी जैन साधुओं की जीवन-संघर्ष की दास्ताँ भी बयाँ करती है। किस प्रकार गंभीर रोग से ग्रस्त होने पर भी धर्म जैन साधुओं को अस्पताल में जाकर इलाज कराने की इजाजत नहीं देता। वह कष्ट सहने को तैयार है, मगर इलाज के लिए नहीं। साध्वी के वृद्ध जीवन को देख सुमेधा को लगता है- ''ब्रह्मचारी के कठिन व्रत से मानो उसकी वय स्थिर होकर रह गई है। काली-काली शांत आँखें, स्निग्ध त्वचा। प्रथम दृष्टि से अनायास उन्हें देख पश्चाताप में डूबी रत्नावली का भान हुआ। मानो रूपमती देह के मोह की व्यर्थता का ताना मार किसी तुलसी को हमेशा के लिए खो चुकी हो।''[16] कहानी इस बात पर भी चिंता व्यक्त करती है कि कामनाओं पर नियंत्रण कर सुंदर शिक्षित व्यक्ति का साधु बन जाना आसान नहीं होगा।

इन सब के साथ कहानी मध्यवर्ग के स्त्री जीवन, रूढ़ियों व बंदरों की भी चर्चा करती है। धर्म की आड़ में व्यक्ति स्वास्थ्य के लिए आवश्यक चीजों का त्याग कर किस प्रकार स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ को तैयार हो जाता है। इस प्रकार कहानी मध्यवर्गीय जीवन का कच्चा चिट्ठा खोलती द्रष्टव्य होती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'एक मुट्ठी छाँव' आदमी की आदमीयत का एहसास दिलाती है। एक मजदूर परिवार की व्यथा-कथा के बहाने मानवीय मूल्यों के बचे होने की महक महसूस कर सकते हैं। आधे दिन की दिहाड़ी मजदूरी पर लाए गए मजदूर के साथ तीन बच्चों को देखकर जब उसकी जीवन गाथा का पता चलता है तो हृदय करुणा से आप्लावित हो जाता है।

कहानी के नायक ने जब मजदूर की तंगहाली की दास्ताँ सुनी तो उसे अपने पिता के दुर्दिनों की याद आ गई। उसे याद आया कि उन्हें न चाहते हुए भी ट्यूशन लेनी पड़ी। घर में कई बार फाकाकशी की स्थिति आ गई। उनके पिता जब से सेठ जी के बच्चों को पढ़ाने के लिए उनसे कुछ अग्रिम माँगने गए किंतु स्वाभिमानवश कुछ माँग नहीं पाए किंतु उनके बेटे से ज्ञात हुआ कि घर में सब भूखे हैं तो सेठ जी ने मास्टर साहब को उस महीने की राशि अग्रिम देकर उनकी मदद की थी। मानवीय मूल्यों की यही उपस्थिति उसे आज अपने सम्मुख उस मजदूर की दयनीय दशा से हो जाती है। जिसकी पत्नी अस्पताल में इलाज के लिए पड़ी है और वह अपने तीन बच्चों को लेकर मजदूरी की तलाश में भटकने को विवश है।

उस मकान मालिक की पत्नी उन बच्चें को खाना व मिठाई देती है। उस समय वह एक माँ जैसा व्यवहार करती है- ''बाहर आए तो देखा पत्नी बच्चों से बतिया रही थी। अपने मन की आँखों से बँधे बच्चे भी खुलने लगे थे, ममता के कोमल

हाथों से। अपने लाडले जब घोंसला छोड़ जाते हैं तो अधेड़ माओं की ममता यूँ ही तृप्त हुआ करती है, अन्य बच्चों के माध्यम से। एक औरत के भीतर की माँ कभी बूढ़ी नहीं होती।''[17] मकान का वह मालिक भी उसकी मदद करना चाहता है। अतएव वह चाहे-अनचाहे हुए भी काम बताकर उसे एडवांस पैसा देकर उसकी मदद करता है।

मनीषा ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के हर एक वर्ग की पड़ताल का प्रयास किया है। उनकी 'स्टीकर' कहानी एक ऐसी कहानी है जो पेशे से होटल के वेटर की कहानी है। वेटर के काम में आने वाली उलझनों, नौकरी की शर्तों के बावजूद, मानवीय संवेदनाओं के हिलोरे लेने की गाथा है। कहानी सर्वाइवल आफ फिटेस्ट की बात करती है। कहानीकार लिखती है कि- ''इंसान हारने के लिए बना ही नहीं। कैसे हार जाए, जब वह करोड़ों शुक्राणुओं की रेस जीतकर पैदा हो चुका है, तो बाद में क्यों हारे। पहली लड़ाई सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट की तो वही थी।''[18]

होटल के वेटर का काम करने वाला अजय कहीं बाहर खीझ महसूस करता है। उसे न चाहते हुए भी अपने चेहरे पर हँसी कायम रखनी होती है। चाहे वह स्टिकर जैसी ही हँसी क्यों न हो। गलती न होने पर भी कस्टमर से माफी माँगना जैसे उसकी जॉब कार्ड में जुड़ा हुआ है। कहानी के पात्र हनीफ के माध्यम से कहानीकार स्पष्ट कर देना चाहती है कि असल में जिंदगी कुछ और ही है जो होटल की चारदीवारी की जिंदगी के समान भले ही वैभवपूर्ण न दिखे, पर खुशगवार तो जरूर है। ''कोई न कोई इतिहास तो हर किसी का होता है। हम सब वह कहाँ होते हैं जो हम यहाँ दिखते हैं इस रेस्तरा में। शहर के खुले हिस्सों को पीछे छोड़कर जब वह शहर की गलियों के गुंजलकों का रुख लेता हैं, तब कहीं जाकर लगता है कि वह अपनी असलियत में लौट आया है। अपने चेहरे की सौजन्यता और मुस्कुराहट की चेपियाँ हटाकर वह पलस्तर उखड़ी दीवारों पर चिपका देता है।''[19]

वेटर का जीवन जीते हुए अजय को लगता है कि कोई व्यक्ति हर काम को ऑन टाइम या एक्यूरेसी से हर बार कैसे कर सकता है। क्या वह कोई मशीन है। मशीन भी गलती कर सकती है, तो वह तो इंसान है। क्या उसे गलती करने का कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार मनीषा की यह कहानी होटल के वेटर के जीवन और उनके दायित्वों की विभिन्न परतों को उघाड़ते हुए हमारे हृदय की संवेदना को झंकृत करती है।

मनीषा की कहानी 'लुकाछिपी' सैनिक जीवन के विविध पहलुओं के साथ-साथ लोकजीवन के आस्था, विश्वास और अंधविश्वास सब को उजागर करती है। कहानी

लगभग 10 वर्षों में कश्मीर क्षेत्र में आए बदलाव को भी बयाँ करती हैं। लेफ्टिनेंट कर्नल हंसराज को उस क्षेत्र के लोगों की दशा पर करुणा आती है। कहते हैं- ''प्राकृतिक संपदा से समृद्ध इस प्रदेश के मेहनतकश संघर्षशील लोगों के हिस्से में हमेशा एक ही चीज आई थी, वह थी- बदहाली। यह बदहाली उनकी जिंदगी का अभिन्न हिस्सा थी। हाड़-तोड़ मेहनत उनके जीवन का तरीका था। लुटते चले जाना उनकी नियति और गैरों पर विश्वास एक दर्शन। यह जो हताशा भरी बदहाली जो आज लोगों के चेहरे पर नुमायाँ थी, वह उनके हाथों से कुदाल और पैरों से धान के टुकड़ा-टुकड़ा खेत छीन लिए जाने की थी। वे हाथ कुदाल गिरा चुके थे, मगर बंदूक पकड़ने से कतरा रहे थे। इसलिए उनके घर टूटे थे और बच्चे भूखे थे। जिन हाथों में ग्रेनेड थे बंदूकें थीं, उनके घर पक्के हो रहे थे।''[20] इस कथन से हम कश्मीर के लोक जीवन को समझ सकते हैं।

'ठहरो हिंदुस्तानी साहब' शब्द कर्नल हंसराज को अंदर तक हिला देता है। उन्हें लगता है कि आम व्यक्ति के अंदर यह भेदभाव कैसे जागृत हुआ होगा। ऑपरेशन मित्रता का स्मरण करते हुए कर्नल साहब के हृदय के कई घाव ताजा हो जाते हैं। कुछ वर्षों पहले के कश्मीर एवं आज के कश्मीर के हाल पर विचार करते हुए कर्नल हंसराज स्पष्ट करते हैं कि- ''वे उस प्रसिद्ध चौक से गुजरते हुए आगे की तरफ मुड़ गए जहाँ मौत का खेल शतरंज की तरह खेला जाता था। वह प्यादा मरा... वह वजीर। वजीर कम मरते, प्यादे ज्यादा। बल्कि वजीरों की शह और मात के बीच प्यादे कब लुढ़क जाते इसका पता न चलता, न फर्क पड़ता। ...तब के शहर और अब के शहर की सोच तक में फर्क आ गया है। पहले एक-एक मौत मायने रखती थी। अब विस्फोटों और दो चार मौतों के बावजूद एक आध घंटे में ही जिंदगी फिर से रवाँ हो जाती है। वो मरी हुई शतरंज की गोटियों की तरह लाशें हटाते और फिर खेल शुरू...अब वे फिर ट्यूरिज्म के विकास की तरफ बढ़ रहे थे।''[21] यह कथन कश्मीर के जीवन, पर्यटन और हिंसा सभी को साफ तौर पर स्पष्ट करता है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी वहाँ का जीवन कैसा होगा इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है।

'साशा' और 'रोवर' नामक लैब्राडोर कुत्ते की कथा के माध्यम से कहानीकार ने इन कुत्तों की लोक सेवा और सैनिकों की मदद करने के भाव के साथ-साथ प्रेम और बलिदान का भी स्मरण कराया है। साथ ही यह भी बता दिया है कि लोकजीवन कैसे चीजों को अपने तरीके से बना लेता है। कैसे उनकी कब्र सूफी मजारों में बदल जाती

है और मेले लगने लगते हैं। इस प्रकार यह कहानी कश्मीरी जीवन, सैनिक सेवा और लोक जीवन के विविध पहलुओं का चित्र उपस्थित करती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मनीषा कुलश्रेष्ठ का यह कहानी संग्रह हमारे समय व समाज के कई मुद्दों को उठाता है और उस पर हमें सोचने को मजबूर करता है।

संदर्भ सूची

1. मनीषा कुलश्रेष्ठ : *कुछ भी तो रूमानी नहीं*, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम पेपरबैक संस्करण, 2008, पृष्ठ 25
2. वही, पृष्ठ 17
3. वही, पृष्ठ 20
4. वही, पृष्ठ 27
5. वही, पृष्ठ 35
6. वही, पृष्ठ 37
7. वही, पृष्ठ 45
8. वही, पृष्ठ 51
9. वही, पृष्ठ 42
10. वही, पृष्ठ 43
11. वही, पृष्ठ 57
12. वही, पृष्ठ 73
13. वही, पृष्ठ 64
14. वही, पृष्ठ 94
15. वही, पृष्ठ 95
16. वही, पृष्ठ 90
17. वही, पृष्ठ 103
18. वही, पृष्ठ 114
19. वही, पृष्ठ 114
20. वही, पृष्ठ 116
21. वही, पृष्ठ 123

□□□